॥ श्रीहरिः ॥ 301▲

भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारी-धर्म

(तथा स्त्रियोंके लिये कल्याणके कुछ घरेलू प्रयोग)

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

जयदयाल गोयन्दका

॥ श्रीहरि: ॥

भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारी-धर्म

भारतीय संस्कृतिमें नारी-धर्म

भारतीय संस्कृति अपना एक खास निरालापन लिये हुए है। उसका निर्माण अध्यात्मकी सुदृढ़ भित्तिपर उन त्रिकालदर्शी ऋषियोंद्वारा हुआ है, जो दिव्यदृष्टिसम्पन्न, राग-द्वेषशून्य एवं समदर्शी थे। उनकी दृष्टि इहलोकतक ही सीमित नहीं थी। उन्होंने अपनी तपःपूत बुद्धिसे समाधिजन्य दिव्य ईश्वरीय ज्ञानके आधारपर जो सिद्धान्त स्थिर किये हैं, वे सर्वथा निर्दोष, भ्रान्तिशून्य, त्रिकालसत्य एवं मानवबुद्धिसे परे हैं। उन्हें हम अपनी मलिन, मोहग्रस्त, संकीर्ण एवं व्यवसायशून्य बुद्धिके काँटेपर तौलने जाकर धोखा खानेके सिवा और कोई लाभ नहीं उठा सकते। जबसे हम भारतीयोंने शास्त्रका आधार छोड़कर मनमाना आचरण शुरू कर दिया, तभीसे हमारे दु:खके दिन प्रारम्भ हो गये और यदि हमारी चाल ऐसी ही रही तो पता नहीं अभी हम अवनतिके किस गर्तमें जाकर गिरेंगे। वर्तमान युग विचार-स्वातन्त्र्यका युग है। आजका मनुष्य अपनी बुद्धिपर किसी भी प्रकारका

अनुशासन या नियन्त्रण स्वीकार नहीं करता। आज हमें मोहग्रस्त मनुष्योंकी चारों ओर यही आवाज सुनायी देती है—शास्त्रको न मानो, धर्मका अनुशासन मानना गुलामी है, ईश्वरमें विश्वास बुद्धि-पारतन्त्र्यका द्योतक है। भारतवर्षमें भी पश्चिमसे एक ऐसी लहर आयी है, जिसने हमारी बुद्धिको विचलित कर दिया है, हमारे विश्वासको हिला दिया है। आज हम भी पागलोंकी भाँति चिल्लाने लगे हैं—पोथियोंको फाड़ दो, मनुस्मृतिको जला दो, धर्म ही विघटनमें हेतु है, वर्णव्यवस्था एकतामें बाधक है, इत्यादि-इत्यादि। आजकी भारतीय नारी भी, जो शील, विनय, लज्जा एवं सौम्यताकी मूर्ति थी, पाश्चात्य ललनाओंकी देखा-देखी मूर्खताके कारण बहकने लगी है—'हम पुरुषोंकी गुलामीमें नहीं रहना चाहतीं, हमें सीता-सावित्री नहीं बनना है, सतीत्व एक कुसंस्कार है, भारतीय ऋषियोंने हमें पुरुषोंके परतन्त्र बनाकर हमारे प्रति घोर अन्याय किया है' इत्यादि। ऐसे विपरीत समयमें, जबकि धर्मको लोग ढकोसला मानने लगे हैं, धर्मके विषयमें—विशेषकर नारी-धर्मके विषयमें—कुछ लिखनेका प्रयास करना दुःसाहस ही समझा जायगा। फिर भी साँचको कोई आँच नहीं है, सत्य तो

सत्य ही है—चाहे कोई उसे माने या न माने—इसी भरोसेपर कर्तव्यबुद्धिसे प्रेरित होकर अपनी अल्पबुद्धिके अनुसार शास्त्रोंके आधारपर नारी-धर्मके विषयमें कुछ लिखनेका प्रयत्न किया जाता है।

'**धृञ् धारणे**' धातुसे '**मन्**' प्रत्यय लगकर 'धर्म' शब्द बना है। अतः धर्मका अर्थ है—धारण करनेवाला, अथवा जिसके द्वारा यह सब कुछ धारण किया हुआ है। यह तो सभीको मानना पड़ेगा कि यह विश्व-ब्रह्माण्ड किसी नियम अथवा कानूनके द्वारा परिचालित है। पृथ्वी-आकाश, ग्रह-नक्षत्र, सूर्य-चन्द्र, जल-वायु, जड-चेतन, जीवन-मृत्यु, सृष्टि-प्रलय, वृद्धि-क्षय, उन्नति-अवनति, आरोहण-अवरोहण—सब कुछ एक नियमके अधीन है। जगत्की कोई भी क्रिया नियमके प्रतिकूल नहीं होती। इसी नियमका नाम 'धर्म' है। इस नियमको बुद्धिपूर्वक यथावस्थित रूपसे चलानेवाली चेतनशक्तिका नाम 'ईश्वर' है। इसी नियमको करामलकवत् प्रत्यक्ष देखनेवाले विशिष्ट शक्तिसम्पन्न ईश्वरानुगृहीत आप्त पुरुषोंका नाम है— 'ऋषि' और उन ऋषियोंके दिव्य अनुभव तथा उन अनुभवोंके आधारपर ईश्वरीय प्रेरणाके अनुकूल मानव-समाजके ऐहिक-

आमुष्मिक सर्वविध कल्याणके लिये रचे हुए सनातन-नियम जिन ग्रन्थोंमें संगृहीत हैं, उनका नाम है—'शास्त्र'। सनातन-धर्मके ये ही चार प्रधान आधारस्तम्भ हैं। हिंदू-संस्कृति इन्हीं चारपर अवलम्बित है और यही उसकी विशेषता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्म अथवा शास्त्र न तो कोई हौआ है और न उपेक्षा अथवा अनादरकी वस्तु है। धर्मकी जो व्याख्या हमने ऊपर की है और सबसे सरल, शास्त्रसम्मत एवं सर्वमान्य व्याख्या 'धर्म' की यही है—उसके अनुसार धर्म ही विश्वके अभ्युदय एवं निःश्रेयसका एकमात्र साधन है, धर्मसे ही मानव-समाजका वास्तविक तथा स्थायी कल्याण सम्भव है, धर्मसे ही संसारमें सुख; समृद्धि एवं शान्तिका विस्तार हो सकता है*। धर्मके आधारपर ही मानव-जातिका यथार्थ संघटन एवं एकीकरण हो सकता है तथा धर्मसे ही सबके अधिकारों एवं हितोंकी रक्षा हो सकती है। जो लोग यह कहते हैं कि धर्म ही विघटनका हेतु है तथा धर्मसे ही हिंदू-जाति अथवा भारतकी अवनति

---

* यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। (वैशेषिक दर्शन)

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्॥ (मनु० २। ९)

हुई है, धर्मसे ही पारस्परिक कलहकी वृद्धि हुई है, इत्यादि-इत्यादि, उन्होंने वास्तवमें धर्मका तत्त्व समझा ही नहीं।

इसी प्रकार धर्मका ज्ञान भी शास्त्रोंद्वारा ही सम्भव है। किसी भी विषयका सम्यक् ज्ञान उस विषयके पारंगत विद्वानों तथा उनके रचित ग्रन्थोंसे ही हो सकता है। यह माना कि स्थूल जगत्के कतिपय तथ्योंका आंशिक पता आधुनिक वैज्ञानिकोंने लगाया है; परंतु उनका वह ज्ञान अब भी अत्यन्त अधूरा एवं सीमित है। अब भी उसमें बहुत कुछ संशोधनकी आवश्यकता है, वैज्ञानिक स्वयं इस बातको स्वीकार करते हैं। फिर स्थूल जगत् ही तो सब कुछ नहीं है। इसके परे और इससे भी अधिक विस्तृत, विशुद्ध एवं सुन्दर तथा जिसकी यह स्थूल जगत् एक छाया अथवा प्रतिकृतिमात्र है—एक सूक्ष्म जगत् भी है; जिसके अनेकों स्तर हैं और जिसमें हमारी अपेक्षा कहीं अधिक उन्नत, शक्तिसम्पन्न एवं दीर्घजीवी प्राणी रहते हैं। हमारे ऋषियोंने उस जगत्का भी पता लगाया है और इस जगत्के साथ उस सूक्ष्म जगत्का क्या सम्बन्ध है, यहाँके प्राणी वहाँके प्राणियोंद्वारा कैसे प्रभावित होते हैं, वहाँकी शक्तियाँ किस प्रकार यहाँके घटना-चक्रोंका नियन्त्रण

करती हैं, मरनेके बाद जीवात्मा कहाँ-कहाँ जाता है और क्या-क्या करता है, यहाँ किस प्रकारका आचरण करके हम मृत्युके बाद भी सुखी रह सकते हैं तथा अमर जीवन प्राप्त कर सकते हैं एवं कौन-से आचरण हमें गिरानेवाले और दुःख देनेवाले हैं, यहाँ सुख-दुःख, ऊँची-नीची स्थिति, ऊँचा-नीचा जन्म, स्त्री-योनि अथवा पुरुष-योनि—जो कुछ भी हमें प्राप्त होता है, हमारे पूर्व सुकृतों अथवा दुष्कृतोंका फल है तथा सूक्ष्म जगत्‌की शक्तियोंके सहयोगके बिना यहाँ सुख-समृद्धि एवं शान्तिकी आशा दुराशामात्र है—इन सब बातोंको हमारे ऋषियोंने भलीभाँति समझा ही नहीं, देखा भी है और जो कुछ उन्होंने देखा और अनुभव किया है तथा उसके अनुसार जो कुछ आचरण उन्होंने हमारे लिये कल्याणकर समझा है और अनुभव किया है, वही सब हमारे विविध शास्त्रोंमें—हमारे वेदों और पुराणोंमें तथा हमारी स्मृतियोंमें संगृहीत हैं। अतः हमारे शास्त्रोंमें जो कुछ भी लिखा है, सर्वथा सत्य, निर्भ्रान्त एवं पक्षपातरहित है; उसमें स्वार्थका गन्ध भी नहीं है। सत्यका सत्यरूपमें दर्शन करनेवाले महर्षि कभी असत्यवादी नहीं हो सकते। उनके वाक्योंमें असत्य, भ्रम, पक्षपात,

स्वार्थ अथवा राग-द्वेषकी कल्पना करना अपना ही अहित करना है और सत्यसे वंचित रहना है।

नीचे नारी-धर्मपर जो कुछ लिखा जाता है, वह इन्हीं सर्वज्ञ ऋषियोंके बनाये अथवा संग्रह किये हुए ग्रन्थोंके आधारपर लिखा जाता है। वर्तमान युगके विकृत, मलिन एवं राग-द्वेषदूषित अन्तःकरणवाले पुरुषोंको ये सिद्धान्त न जँचें अथवा उन्हें ये पक्षपातपूर्ण अथवा भ्रान्त दिखायी दें तो हम उन्हें इनको माननेके लिये बाध्य नहीं करते; किन्तु यह निश्चित है कि ये सिद्धान्त सर्वथा सत्य एवं सत्यके आधारपर स्थिर किये हुए हैं और इन्हें मानकर इनके अनुसार चलनेसे सबका कल्याण हो सकता है; क्योंकि शास्त्रके सिद्धान्त सबके लिये समानरूपसे हितकर हैं। ऋषियोंने किसी एक वर्गके प्रति पक्षपात तथा किसी दूसरे वर्गके प्रति अन्याय अथवा अत्याचार किया हो—ऐसी कल्पना सर्वथा दूषित है। सबमें एक आत्मा अथवा परमात्माको देखनेवाले ऋषियोंमें पक्षपात कैसा? हाँ, वे इस बातको जानते थे—नहीं-नहीं, जानते हैं—(क्योंकि ऋषि कहीं चले थोड़े ही गये हैं, वे अब भी दिव्य लोकोंमें दिव्य शरीरसे विद्यमान हैं और अब भी अपत्यवत्सला माताकी

भाँति हमें अपनी करुणापूर्ण दृष्टिसे देखते हुए हमारा हित-चिन्तन, हमारा कल्याण-साधन करते रहते हैं; यह दूसरी बात है कि हम अज्ञानवश उनके आदेशोंकी अवहेलना करके, उनके बताये हुए शोभन मार्गका उल्लंघन करके, बार-बार दुःखके गर्तमें गिरते रहे और जान-बूझकर अपना अकल्याण करते रहे।) हाँ, वे इस बातको जानते हैं कि आत्मरूपसे एक होते हुए भी सबके कर्म-कलाप, शरीर, मन-बुद्धि, स्वभाव एवं संस्कार आदि भिन्न-भिन्न होनेसे सबके आचरण एक-से नहीं हो सकते, सबकी योग्यता एक-सी नहीं हो सकती। इसीलिये उन्होंने कर्मानुसार एवं योग्यतानुसार सबके अलग-अलग कर्तव्य निश्चित किये हैं, कर्तव्योंके साथ-साथ सबके अधिकार भी अलग-अलग रखे हैं। साथ ही, इस बातका भी ध्यान रखा है कि सबको अपने-अपने अधिकारमें रहते हुए अपने-अपने कर्तव्यके अनुष्ठानसे ही जीव-जीवनके परम लक्ष्य—परमात्माकी शीघ्र-से-शीघ्र प्राप्ति हो जाय।

यह मानी हुई बात है कि जगत्की सृष्टि ही वैषम्यको लेकर होती है। प्रकृतिकी साम्यावस्थामें जगत्का अस्तित्व ही नहीं रहता। केवल परमात्मा रहते

हैं, जगद्बीजरूपा प्रकृति उनके अंदर रहती है। परमात्माकी इच्छासे जब प्रकृतिके गुणोंमें—सत्त्व, रज, तममें वैषम्य होता है, क्षोभ होता है, तभी सृष्टि-व्यापार प्रारम्भ होता है; और जबतक यह सृष्टि महासर्गके अन्तमें पुनः प्रकृतिमें लीन नहीं हो जाती, तबतक यह वैषम्यका व्यापार चलता ही रहता है और जबतक वैषम्य है, तबतक व्यवहारकी विषमता, व्यवहारका भेद कभी मिट नहीं सकता—चाहे उसे मिटानेकी हम कितनी ही चेष्टा क्यों न करें। जहाँ वैषम्य है, वहाँ कार्य-कलापमें भेद, अधिकारमें भेद अवश्यम्भावी है। इसी भेदको लेकर वर्णाश्रमकी व्यवस्था की गयी है, इसी भेदको लेकर स्त्री-पुरुषके लिये अलग-अलग कर्तव्य निश्चित किये गये हैं और उनका कार्यक्षेत्र अलग-अलग स्थिर किया गया है। इसी भेदको लेकर स्पृश्यास्पृश्यका निर्णय किया गया है। इसी भेदको लेकर राजा-प्रजा, स्वामी-सेवक, गुरु-शिष्य, ब्राह्मण-शूद्र, मस्तिष्कजीवी-श्रमिक, संन्यासी-गृहस्थ, पति-पत्नी आदि विभागों अथवा वर्गोंकी रचना हुई है—जो सृष्टि-संचालनके लिये आवश्यक है। इस नैसर्गिक वैषम्य अथवा विभागको न मानकर जहाँ हम

सबको एक करनेकी व्यर्थ चेष्टा करते हैं, वहीं सांकर्य और गड़बड़ी शुरू हो जाती है, वहाँ वर्गगत कलह प्रारम्भ हो जाते हैं, अधिकारको लेकर लड़ाई होने लगती है, छोटे-बड़ेका प्रश्न सामने आ जाता है। ज्यों-ज्यों हम भेद मिटानेकी चेष्टा करते हैं, त्यों-त्यों विघटन बढ़ता जाता है और फलतः समाज विशृंखलित एवं उच्छिन्न हो जाता है। भेद तो किसी-न-किसी रूपमें फिर भी बना ही रहता है। इस सांकर्य एवं अव्यवस्था तथा उसके दुष्परिणामोंसे बचनेके लिये ही हमारे दीर्घदर्शी, दिव्य-दृष्टि-सम्पन्न महर्षियोंने गुण-कर्मके अनुसार समाजको कई नैसर्गिक विभागोंमें बाँटकर सबके लिये अलग-अलग कर्तव्य, अलग-अलग धर्म निश्चित किये हैं।

धर्मके हमारे यहाँ सामान्यतया दो विभाग किये गये हैं—सामान्य और विशेष। सामान्य अथवा मानवधर्म मनुष्यमात्रके लिये समान है। धृति (धैर्य), क्षमा, दम (मनोनिग्रह), अस्तेय (दूसरेका हक न मारना, चोरी-डकैती न करना), शौच (बाहर-भीतरकी शुद्धि, पवित्रता), इन्द्रिय-निग्रह, धी (सात्त्विक बुद्धि), विद्या (यथार्थ ज्ञान, सत्यासत्यकी वास्तविक पहचान), सत्य और अक्रोध

(क्रोधशून्यता)—मनूक्त धर्मके ये दस लक्षण;[१] योगोक्त पाँच यम[२] —अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (शरीर-निर्वाहके अतिरिक्त भोग्य पदार्थोंका संग्रह न करना) और पाँच नियम[३] —शौच, संतोष, तप (धर्म-पालनके लिये कष्ट सहना), स्वाध्याय (सच्छास्त्रोंका अध्ययन तथा ईश्वरके नाम-गुण आदिका कीर्तन) और ईश्वर-प्रणिधान (शरणागतिपूर्वक नित्य-निरन्तर भजन करते हुए भगवान्की आज्ञाका पालन करना) तथा निर्भयता, अन्तःकरणकी पवित्रता, ज्ञानकी प्राप्तिके लिये किये जानेवाला भगवान्के किसी भी स्वरूपका ध्यान, दान, दम (इन्द्रियनिग्रह), यज्ञ (भगवान् तथा देवताओंकी पूजा, हवन आदि), स्वाध्याय, तप, मन-वाणी-शरीरकी सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, अहंकार आदिका त्याग, मनोनिग्रह, अपैशुन (निन्दा-चुगली न करना),

---

१-धृतिः क्षमाः दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥
(मनु० ६। ९२)

२-अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।
(योग० २। ३०)

३-शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।
(योग० २। ३२)

जीवमात्रके प्रति दया, विषयासक्तिका अभाव, कोमलता, निषिद्ध आचरणमें लज्जा, व्यर्थ चेष्टाका अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, शौच, अद्रोह (किसीसे द्रोह न करना) एवं निरभिमानता—गीतोक्त दैवी सम्पदाके ये छब्बीस लक्षण*, ये सभी सामान्य अथवा मानवधर्मके अन्तर्गत हैं। इनका पालन स्त्री-पुरुष तथा सभी वर्गके मनुष्योंके लिये—चाहे वे किसी वर्ण, जाति, सम्प्रदाय अथवा देशके हों—वांछनीय है। उपर्युक्त दैवी गुण तथा आचरण सभी मतावलम्बियोंको प्रायः मान्य हैं, अतएव सभीके लिये अनुकरणीय हैं।

इन सामान्य धर्मोंके अतिरिक्त विशिष्ट वर्गोंके लिये हमारे शास्त्रोंने कुछ विशिष्ट धर्म भी माने हैं, जो सामान्य धर्मोंके साथ-साथ उन-उन वर्गोंके लिये विशेषरूपसे पालनीय हैं; क्योंकि वे उनके लिये सहज अथवा स्वभावगत हैं

---

* अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥
(गीता १६। १—३)

अर्थात् उन्हें जन्मतः अथवा प्राक्तन संस्कारोंसे प्राप्त हुए हैं। हमारे यहाँ जन्म आकस्मिक अथवा यादृच्छिक नहीं माना गया है। जाति (जन्म), आयु (जीवन-काल) तथा भोग (सुख-दुःखकी प्राप्ति)—ये तीनों ही हमें प्रारब्धकर्मके अनुसार प्राप्त होते हैं, अतएव ये अपरिवर्तनीय हैं—इन्हें कोई बदल नहीं सकता। उपनिषद्‌में आया है—

तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरञ्श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा॥ (छान्दोग्य० ५। १०। ७)

'उन जीवोंमें जो अच्छे आचरणवाले होते हैं, वे इस लोकमें शीघ्र ही उत्तम योनिको प्राप्त होते हैं। वे ब्राह्मणयोनि, क्षत्रिययोनि अथवा वैश्ययोनि प्राप्त करते हैं तथा जो अशुभ आचरणवाले हैं, वे तत्काल अशुभ योनिको प्राप्त होते हैं। वे कुत्तेकी योनि, सूकरयोनि अथवा चाण्डालयोनि प्राप्त करते हैं।'

यही कारण है कि कोई चक्रवर्ती सम्राट् अथवा किसी धन-कुबेरके यहाँ जन्म लेता है तो कोई दीन-हीन भिखारीके

यहाँ; कोई शतायु होता है तो कोई अकालमें ही कालके गालमें चला जाता है; कोई जीवनभर चैनकी वंशी बजाता है तो कोई रो-रोकर दिन काटता है; कोई वृद्धावस्थामें भी स्वस्थ-सबल रहता है तो कोई जन्मसे ही रोगोंसे आक्रान्त रहता है।

उपर्युक्त सिद्धान्तोंके अनुसार स्त्री-योनि भी प्राक्तन कर्मोंके अनुसार ही प्राप्त होती है। एक ही माता-पितासे कई संतानें उत्पन्न होती हैं; उनमें कोई पुरुष-चिह्नसे युक्त होती है और कोई स्त्री-चिह्नसे। प्राक्तन कर्मोंके अतिरिक्त उनके इस भेदमें क्या हेतु हो सकता है। जन्मके समय लिंगभेदके अतिरिक्त पुत्र एवं कन्याकी शरीर-रचना अथवा आकृतिमें कोई अन्तर नहीं होता। धीरे-धीरे अवस्था बढ़नेपर उनके शरीरकी गठनमें अन्तर स्पष्ट होने लगता है। यहाँतक कि किशोर अवस्थातक पहुँचते-पहुँचते दोनोंके शरीरकी रचनामें काफी अन्तर हो जाता है तथा युवा अवस्थामें यह अन्तर और भी स्पष्ट हो जाता है एवं अन्ततक बना रहता है। स्त्री और पुरुषके स्वभाव, शारीरिक बल तथा बौद्धिक विकासमें भी काफी अन्तर होता है। स्त्रियोंमें प्रायः भीरुता, अपवित्रता, चपलता तथा पुरुषोंकी अपेक्षा बुद्धिकी मन्दता

आदि दोष होते हैं।* उनमें सेवा एवं सहिष्णुताकी मात्रा अधिक होती है। मस्तिष्ककी अपेक्षा उनमें हृदयकी प्रधानता होती है। इन्हीं सब कारणोंसे स्त्रियोंको हमारे शास्त्रोंमें पुरुषके अधीन रखा गया है। किसी भी हालतमें उन्हें स्वतन्त्र रहनेका अधिकार नहीं दिया गया है। उनके शरीरके गठन तथा अंगोंकी रचना एवं उनके शरीरके व्यापार भी ऐसे हैं, जिनके कारण पुरुषोंके अधीन रहना ही उनके लिये स्वाभाविक एवं श्रेयस्कर है।

स्वभाव, बुद्धि तथा शारीरिक रचना एवं बल-पौरुषके अनुरूप ही स्त्रियोंका कार्यक्षेत्र भी पुरुषोंसे पृथक् रखा गया है। हिंदूनारी घरकी रानी होती है। घरकी व्यवस्था तथा सफाई, भोजनशालाका प्रबन्ध तथा पाक तैयार करना, बच्चोंका लालन-पालन, उनकी शिक्षा तथा चरित्र-निर्माण, अन्न-वस्त्रका यथोचित संग्रह, आय-व्ययका समीकरण, परिवारके सब लोगोंकी सँभाल, सेवा एवं आवश्यकताओंकी पूर्ति तथा प्रधानतया गृहस्वामीकी सेवा, उन्हें सब प्रकारसे सुख

* श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥
साहस अनृत चपलता माया। भय अबिबेक असौच अदाया॥

पहुँचाना तथा उन्हें गृहस्थसम्बन्धी चिन्ताओंसे मुक्त रखना, सुयोग्य सन्तान उत्पन्न करके वंशकी रक्षा एवं वृद्धि करना, पतिके धर्म-कार्योंमें हाथ बँटाना तथा स्वयं धर्मपालन करते हुए अपना एवं अपने पतिका उद्धार करना; पतिको ही परमात्माका प्रतीक, उनका प्रतिनिधि मानकर उन्हींमें अनन्य प्रेम करना—आदि-आदि स्त्रियोंके महान् कर्तव्य हमारे शास्त्रोंमें बताये गये हैं। सेवा, त्याग एवं आत्मोत्सर्ग ही नारीके प्रधान गुण हैं। पतिके प्रति आत्मसमर्पण तथा सन्तानके लिये आत्मदान ही उसके जीवनका परम पुनीत व्रत है। भगवान्‌के प्रति भक्तको आत्मसमर्पण किस प्रकार करना चाहिये, इसकी शिक्षा हमें पतिपरायणा पतिव्रता नारीके आदर्श जीवनसे ही मिलती है। इन्हीं सब कारणोंसे भारतीय समाजमें नारीका स्थान बहुत ऊँचा है। ऐसी दशामें भारतीय नारीको पुरुषकी गुलाम बतलाकर उसके अंदर पुरुषोंके प्रति विद्रोह-भावना उत्पन्न करना, उसे महान् सती-धर्मसे विचलितकर पथभ्रष्ट करना, घरकी रानीके महान् गौरवमय पदसे नीचे उतारकर पद, अधिकार एवं नौकरीके लिये दर-दर भटकनेवाली राहकी भिखारिणी बनाना कहाँतक उसका हित-साधन करना है— इसे नारी-समानाधिकारके

हिमायती स्वयं सोच सकते हैं। स्त्री और पुरुषमें शरीर, बुद्धि एवं स्वभावगत जो नैसर्गिक भेद है, उसे किसी प्रकार भी मिटाया नहीं जा सकता; और उसीके अनुसार दोनोंके कर्तव्य, अधिकार एवं कार्यक्षेत्रमें भी भेद रहना आवश्यक है। दोनोंके कार्यक्षेत्र तथा अधिकारोंमें समता लानेकी चेष्टा करना समाजको छिन्न-भिन्न करना है। इससे कभी जगत्का हित-साधन नहीं हो सकता। पाश्चात्य जगत्में इस प्रकारकी चेष्टासे क्या-क्या अनर्थ हो रहे हैं, वहाँकी पारिवारिक सुख-शान्ति किस प्रकार नष्ट हो रही है—इसे देखते-सुनते हुए भी हमलोग आँख मूँदकर उसी मार्गपर चलनेके लिये उतावले हो रहे हैं, यह कैसी विडम्बना है!

स्त्रियोंकी शिक्षा भी ऐसी होनी चाहिये, जो उनके जीवन तथा आदर्शके अनुकूल हो तथा जो उनके कर्तव्य-पालनमें सहायक सिद्ध हो। पुरुषोंके आदर्शके अनुसार स्त्रियोंको भी उन्हीं सब विषयोंकी शिक्षा देना उनके जीवनको बर्बाद करना—उन्हें इतोभ्रष्ट-ततोभ्रष्ट करना है। वर्तमान शिक्षा-पद्धतिका उद्देश्य तो इस पद्धतिको प्रचारित करनेवाले पुरुषोंके ही कथनानुसार भारतीय नवयुवकोंको गुलाम बनाना, उनकी अपनी निजकी संस्कृति, इतिहास, पूर्वपुरुषों एवं धर्मके प्रति

अनास्था उत्पन्न करना—उन्हें कहनेमात्रको भारतीय किंतु हृदयसे पाश्चात्य बना देना रहा है और इसी पद्धतिके अनुसार अपनी कन्याओंको भी शिक्षित कर हमने उनका ही नहीं, अपितु साथ-साथ अपने तथा अपनी भावी सन्तानके भी सर्वनाशका बीज बो दिया, किंतु अब भी हम यदि चेत जायँ तो अपने सर्वनाशको बचा सकते हैं।

हमें अपनी कन्याओंका शिक्षा-क्रम ऐसा बनाना चाहिये, जिससे वे आदर्श गृहिणी तथा सीता-सावित्री, अनसूया, मदालसा, मैत्रेयी आदिके समान पतिव्रता बन सकें। उन्हें साधारण भाषा तथा साहित्यिक ज्ञानके साथ-साथ सीना-पिरोना, विविध पाक तैयार करना, बच्चोंका लालन-पालन करना और उन्हें शिक्षा देना, स्वास्थ्य एवं सफाईके साधारण नियमोंको जानना, देशी चिकित्साके प्रारम्भिक सिद्धान्तोंका तथा घरेलू नुस्खोंका ज्ञान प्राप्त करना, घायलोंकी प्रथम सेवा करना, गृह-प्रबन्ध, कृषि, गणित एवं अर्थशास्त्रका, चित्रकर्म, शिल्प आदि कलाओंका तथा इतिहास-भूगोलका साधारण ज्ञान प्राप्त करना तथा सर्वोपरि नीति, सद्‌गुण-सदाचार, सौजन्य, सादगी, कर्तव्य-पालन, ईश्वरभक्ति तथा धर्मका व्यावहारिक ज्ञान—इत्यादि विषयोंकी शिक्षा दी

जानी चाहिये। यह शिक्षा भी उन्हें यथासम्भव घरोंमें ही दी जानी उचित है। पाठशालाओंमें चरित्र-सम्पन्न आदर्श अध्यापिकाओंका प्रायः अभाव होनेसे बालिकाओंके चरित्रपर बहुधा अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता और वे प्रायः विलासप्रिय एवं शौकीन बन जाती हैं। साथ ही भारतीय आदर्शके अनुसार वयस्क हो जानेपर लड़कियोंका बाहर निकलना भी श्रेयस्कर नहीं है। बालक-बालिकाओंकी सहशिक्षा तो भारतीय पद्धतिके सर्वथा प्रतिकूल एवं त्याज्य है। उससे तो लाभकी अपेक्षा हानिकी ही अधिक सम्भावना है। अतः उससे सर्वथा बचना चाहिये। हमारे यहाँ तो स्त्री-पुरुषोंके सम्पर्कपर बहुत अधिक नियन्त्रण रखा गया है और सती-धर्मकी रक्षाके लिये यह परमावश्यक है। सती-धर्म ही भारतीय नारीका परम भूषण माना गया है और उसीने हिन्दू-जाति एवं हिन्दू-धर्मकी रक्षा की है। क्षेत्र एवं बीजकी शुद्धि—रज-वीर्यकी शुद्धि ही जातिको एवं समाजको पवित्र रख सकती है और इसी सिद्धान्तको लक्ष्यमें रखकर नारी-जातिकी पवित्रता—सतीत्वरक्षापर इतना जोर दिया गया है।

महाकवि कालिदासके 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में महर्षि कण्वने अपनी पोष्य-पुत्री शकुन्तलाको ससुराल जाते समय बड़ा ही सुन्दर उपदेश दिया है। कण्व कहते हैं—

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥

(चतुर्थ अंक, श्लोक २०)

'बेटी! ससुरालमें जाकर सास-ससुर आदि बड़ोंकी सेवा करना; अपने पतिकी अन्य पत्नियोंके साथ (यदि कोई हो) मित्रताका, प्रेमका बर्ताव करना; यदि कभी पतिका तिरस्कार भी मिले तो क्रोधके वशीभूत होकर उनके प्रतिकूल आचरण भूलकर भी न कर बैठना; दास-दासियोंके प्रति सदा दयाका भाव बनाये रखना और प्रचुर भोग-सामग्री प्राप्त करके अभिमानसे फूल मत जाना। इस प्रकारका आचरण करनेसे ही युवतियाँ 'गृहिणी' के सम्मान्य पदपर प्रतिष्ठित होती हैं और जो इसके विपरीत आचरण करती हैं, वे तो अपने कुलके लिये आधिरूप—क्लेशदायक बन जाती हैं।'

कविवर कालिदासने शास्त्रोंमें विस्तारसे कहे हुए 'नारी-धर्म' का निचोड़ बहुत थोड़े शब्दोंमें इस श्लोकमें रख दिया है।

मनुकथित स्त्री-धर्म

हमारे धर्मशास्त्रोंमें मनुस्मृति धर्मका एक प्रधान ग्रन्थ है। इसमें बहुत-से श्लोक तो ऐसे हैं, जिनमें स्त्री-पुरुष दोनोंके लिये ही सामान्य धर्म बतलाये गये हैं। कितने ही ऐसे श्लोक हैं, जिनमें केवल पुरुषोंके कर्तव्य ही बतलाये गये हैं एवं कितने ऐसे श्लोक भी हैं, जिनमें केवल स्त्रियोंके ही कर्तव्यका निर्देश है। उनमेंसे, जिनमें केवल स्त्रियोंके ही कर्तव्य बतलाये गये हैं, कुछ श्लोकोंको उद्‌धृत करके उनके आधारपर साररूपमें कुछ स्त्री-शिक्षाकी समयोपयोगी बातें बतलायी जाती हैं।

मनु आदि ऋषियोंने स्त्री-जीवनका स्वरूप भलीभाँति समझकर उसकी रक्षाके लिये उनको सदा पुरुषोंके अधीन होकर रहनेकी ही आज्ञा दी है—

बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता।
न स्वातन्त्र्येण कर्तव्यं किंचित्कार्यं गृहेष्वपि॥
बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत् पाणिग्राहस्य यौवने।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतन्त्रताम्॥
पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि नेच्छेद्विरहमात्मनः।
एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्ये कुर्यादुभे कुले॥

(मनु० ५। १४७—१४९)

'स्त्री बालिका हो या युवती हो अथवा बूढ़ी हो, उसे अपने घरमें भी कोई कार्य स्वतन्त्रतासे कदापि नहीं करना चाहिये। बाल्यावस्थामें वह पिताके अधीन रहे, युवती-अवस्थामें पतिके वशमें रहे और यदि पतिकी मृत्यु हो जाय तो पुत्रोंके अधीन रहे; तात्पर्य यह कि स्त्री कभी स्वच्छन्दताका आश्रय न ले। वह पिता, पति अथवा पुत्रोंसे अपनेको अलग रखनेकी कभी इच्छा न करे क्योंकि इनसे अलग रहनेसे पितृकुल और पतिकुल दोनोंके कलंकित होनेकी सम्भावना है।'

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥

(मनु० ९। ३)

'स्त्रीकी कुमारावस्थामें पिता रक्षा करता है, युवावस्थामें पति रक्षा करता है और वृद्धावस्थामें पुत्र रक्षा करते हैं; उसे कभी स्वाधीन नहीं रहना चाहिये।'

स्त्रियोंके स्वतन्त्र और अरक्षित होनेपर नाना प्रकारके दोष उत्पन्न हो जाते हैं और उनकी रक्षा करनेसे अपनी और धर्मकी रक्षा होती है। इसीलिये शास्त्रोंमें स्त्रियोंके लिये स्वतन्त्रताका विरोध किया गया है। शास्त्रकार, ऋषि-

महर्षि, त्रिकालदर्शी, स्वार्थत्यागी, समदर्शी, अनुभवी, पूर्वापरको गहराईसे सोचनेवाले और संसारके परम हितैषी थे; अतः उनकी बातोंपर हमको विशेष ध्यान देकर स्त्रियोंकी सब प्रकारसे रक्षा करनी चाहिये।

सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः।
द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः॥
इमं हि सर्ववर्णानां पश्यन्तो धर्ममुत्तमम्।
यतन्ते रक्षितुं भार्यां भर्तारो दुर्बला अपि॥
स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च।
स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन् हि रक्षति॥
यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम्।
तस्मात्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः॥
न कश्चिद्योषितः शक्तः प्रसह्य परिरक्षितुम्।
एतैरुपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम्॥
अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत्।
शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य वेक्षणे॥

(मनु० ९। ५—७,९—११)

'कुसंग अथवा आसक्ति सूक्ष्म-से-सूक्ष्म क्यों न हो, उससे भी स्त्रियोंकी विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि

रक्षित न होनेपर वे पति और पिता दोनोंके कुलको ही शोकमें डाल देती हैं। स्त्रीकी रक्षा सब वर्णोंके लिये ही उत्तम धर्म है, इस धर्मको दृष्टिमें रखकर दुर्बल पति भी अपनी पत्नीको सुरक्षित रखनेका यत्न करते हैं; क्योंकि जो पत्नीकी यत्नपूर्वक रक्षा करता है, वह अपनी सन्तानको वर्णसंकर होनेसे बचाता है, अपने चरित्रको निष्कलंक रखता है, अपनी कुल-मर्यादाकी रक्षा करता है तथा अपनी और अपने धर्मकी भी रक्षा कर लेता है। स्त्री जैसे पुरुषका सेवन करती है, वैसी ही सन्तानको जन्म देती है; अतः प्रजाकी शुद्धिके लिये—सन्तानको वर्णसंकरतासे बचानेके लिये स्त्रीकी यत्नपूर्वक रक्षा करे। कोई भी बल-प्रयोग करके स्त्रियोंकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हो सकता; किन्तु इन नीचे लिखे जानेवाले उपायोंको काममें लेनेसे उनकी रक्षा की जा सकती है। स्त्रीको धनके संग्रहमें और उसे खर्च करनेके कार्यमें लगावे। घरको स्वच्छ रखने, दान-पूजन आदि धर्म-कार्य करने, रसोई बनाने तथा घरके सामानकी देखभाल करनेके कार्यमें भी उसे नियुक्त करे।'

कन्याको चाहिये कि वह अपना विवाह कभी स्वयं स्वतन्त्रतापूर्वक न करे; क्योंकि जो अपने बड़े-बूढ़े अनुभवी

बुद्धिमान् हितैषी होते हैं, वे विवेकपूर्वक जो काम करते हैं, वह इस लोक और परलोकमें लाभदायक होता है। इसके विपरीत अपनी बाल-चपलतासे किया हुआ सम्बन्ध इस लोक एवं परलोकमें भी हानिकर हो सकता है। अतः उसके अभिभावक, माता-पिता, भाई आदि शुद्ध भावसे कन्याका हित समझकर जिसके साथ उसका विवाह कर दें, उसीको प्रसन्नतापूर्वक ईश्वरका विधान समझकर पतिरूपमें स्वीकार करना चाहिये और आजीवन उसीकी सेवा करना और उसकी मृत्युके बाद भी उस पतिकी दी हुई शिक्षाके अनुसार ही अपना जीवन बिताना चाहिये।

यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता वानुमते पितुः।
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लंघयेत्॥

(मनु० ५। १५१)

'पिता अथवा पिताकी अनुमति लेकर भाई भी कन्याको जिसके साथ ब्याह दे, उसी पतिकी यह जीवनभर सेवा-शुश्रूषा करे तथा उसकी मृत्यु होनेपर भी यह उसका उल्लंघन न करे' [अर्थात् उससे सम्बन्ध तोड़कर किसी दूसरेसे सम्बन्ध न जोड़े; पतिके जीते हुए उसकी आज्ञाको सदा माने और उसके मरनेपर भी उसकी दी हुई आज्ञाका कभी उल्लंघन न करे]

आजकल जो शास्त्र-विधिसे विवाह न करके रजिस्ट्रीमात्रसे ही विवाह हो जानेकी प्रथाका समर्थन किया जा रहा है, वह बहुत बुरा है। इससे विवाहकी पवित्रता तो नष्ट होती ही है, प्रेमका बन्धन भी नहीं रहता और बात-बातमें तलाककी नौबत आती है। पाश्चात्य देशोंमें आज यही हो रहा है। हमारे भारतवर्षमें शास्त्रीय पद्धतिसे विवाह करनेकी जो प्रथा है, तदनुसार विवाह-सम्बन्ध करनेपर हजारोंमें भी एक भी ऐसा दृष्टान्त दृष्टिगोचर नहीं होता, जो पतिको त्यागकर दूसरेसे विवाह करे या पतिपर मुकदमा करे; क्योंकि ऋषियोंने स्त्री और पुरुषके कल्याणके लिये ही अत्यन्त रहस्यमय विवाह-संस्कार-पद्धतिका विधान किया है, जिसमें पुण्याहवाचन तथा हवन आदि कर्मोंका वर और कन्याके मंगलके लिये उल्लेख है—

मङ्गलार्थं स्वस्त्ययनं यज्ञश्चासां प्रजापतेः।
प्रयुज्यते विवाहेषु प्रदानं स्वाम्यकारणम्॥

(मनु० ५। १५२)

'विवाहके अवसरपर जो स्वस्तिवाचन तथा प्रजापतिका यजन होता है, वह तो ब्याही जानेवाली स्त्रियोंके मंगलके

लिये है; वास्तवमें कन्यादान ही स्वामित्वका कारण है।' अर्थात् गुरुजनोंके द्वारा कन्या जिसे दे दी जाती है, वही पति है और उसीकी वह पत्नी है—यह निश्चय कन्यादान होनेपर ही होता है।

विवाह होनेके बाद स्त्रीका सबसे बढ़कर प्रधान कर्तव्य यह हो जाता है कि वह पतिको ही सर्वस्व मानकर पतिके आज्ञानुसार पतिकी प्रसन्नताके लिये ही समस्त आचरण करे। पति अयोग्य हो तो भी उसे देवताओंके समान समझकर उसकी सेवा करे। इसीमें उसका सब प्रकारसे इस लोक और परलोकमें हित है।

अनृतावृतुकाले च मन्त्रसंस्कारकृत्पतिः।
सुखस्य नित्यं दातेह परलोके च योषितः॥
विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः।
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः॥
पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा।
पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत् किंचिदप्रियम्॥

(मनु० ५। १५३-१५४,१५६)

'वैदिक मन्त्रोंद्वारा विवाह-संस्कार करनेवाला पति ऋतुकालमें तथा उससे भिन्न समयमें भी स्त्रियोंको इस

लोक और परलोकमें सदा सुख देनेवाला होता है। शीलहीन, स्वेच्छाचारी अथवा गुणोंसे शून्य होनेपर भी पति साध्वी स्त्रीके लिये सदा देवताकी भाँति पूजनीय है। परम कल्याणमय पतिलोककी इच्छा रखनेवाली नारी पाणिग्रहण करनेवाले पतिके जीवित रहने अथवा मरनेपर भी कभी कोई ऐसा आचरण न करे, जो उसे प्रिय न हो।'

पुरुषका यह परम कर्तव्य बतलाया गया है कि वह जो भी यज्ञ, दान, तप, व्रत, उपवास आदि उत्तम क्रिया करे, स्त्रीकी सलाहसे उसको साथ लेकर ही करे। इसीलिये स्त्रीको पतिके बिना या उसकी आज्ञाके बिना अलग यज्ञ, तीर्थ, व्रत, उपवास, सत्संग आदि धार्मिक कर्म भी करनेकी आवश्यकता नहीं है; उसके लिये तो पतिसेवासे ही इस लोक और परलोकमें कल्याण बतलाया है।

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते॥
पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता।
सा भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते*॥

* ऐसा ही श्लोक अ० ९। २९ का भी है।

अनेन नारी वृत्तेन मनोवाग्देहसंयता।
इहाग्र्यां कीर्तिमाप्नोति पतिलोकं परत्र च॥

(मनु० ५। १५५,१६५-१६६)

'स्त्रियोंके लिये पतिसे अलग कोई यज्ञ, व्रत और उपवास करनेका विधान नहीं है; जिस पातिव्रत्यका आश्रय लेकर वह पतिकी शुश्रूषा करती है, उसीसे वह स्वर्गलोकमें सम्मानित होती है। जो मन, वाणी और शरीरको संयममें रखकर कभी पतिके विपरीत आचरण नहीं करती, वह (भगवत्स्वरूप) पतिलोकको प्राप्त होती है और सत्पुरुषों-द्वारा 'साध्वी' इस प्रकार कही जाती है। मन, वाणी और शरीरको संयममें रखनेवाली नारी इस बर्तावसे इस लोकमें उत्तम कीर्ति और परलोकमें पति-धामको प्राप्त करती है।'

स्त्रीको उचित है कि जिसमें पति संतुष्ट हो, उसीमें संतुष्ट रहकर पतिके अनुकूल धार्मिक क्रिया करते हुए घरका हरेक काम बड़ी कुशलताके साथ करे। न तो समयको व्यर्थ बितावे और न फिजूलखर्च ही करे, बल्कि भगवान्‌को याद रखते हुए पतिके आज्ञानुसार ही सारा कार्य करे; क्योंकि पति-सेवा ही स्त्रीके लिये सब कुछ है। ऐसा आचरण करनेवाली स्त्री इस लोक और परलोकमें प्रशंसनीय है।

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया॥

(मनु० २। ६७)

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया॥

(मनु० ५। १५०)

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन॥
उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम्॥
अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्च ह॥

(मनु० ९। २६—२८)

'स्त्रियोंके लिये वैवाहिक विधिका पालन ही वेदोक्त उपनयन-संस्कार माना गया है। ससुरालमें रहकर पतिकी सेवा ही उनके लिये गुरुकुलका निवास है और भोजन बनाना आदि घरके कामकाज ही उनके लिये दोनों समयका अग्निहोत्र है। स्त्रीको सदा ही प्रसन्न रहना और घरके कार्योंमें दक्ष होना चाहिये। वह गृहकी प्रत्येक सामग्रीको स्वच्छ रखनेवाली और खुले हाथों खर्च न करनेवाली बने।

परम सौभाग्यशालिनी स्त्रियाँ सन्तानोत्पादनके (मातृत्वके) लिये हैं। ये सर्वथा सम्मानके योग्य और घरकी शोभा हैं। घरकी स्त्री और लक्ष्मीमें कोई भेद नहीं है। सन्तानको उत्पन्न करना, उत्पन्न हुई सन्तानका भलीभाँति पालन-पोषण करना और प्रतिदिन भोजन आदि बनाकर लोकयात्राका निर्वाह करना—यह सब प्रत्यक्षरूपसे स्त्रीके अधीन है। सन्तानकी प्राप्ति, धर्म-कार्यका अनुष्ठान, सेवाकार्य, उत्तम (धर्मयुक्त) रति, पितरोंकी स्वर्ग-प्राप्ति तथा अपनी भी पारलौकिक उन्नति स्त्रीके अधीन है।'

बड़े ही दुःखकी बात है कि धर्मप्राण भारतमें पापमय तलाक-कानून बन गया है। सुना जाता है, अमेरिका-इंग्लैण्ड आदि विदेशोंमें कहीं-कहीं पचास प्रतिशत तलाकके मुकदमे होते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि इससे सतीत्वका नाश, लोकापवाद, समयका अपव्यय, फिजूलखर्ची, वैमनस्य, चिन्ता, शोक, भय, पाप और मुकदमेबाजी तथा इहलोक-परलोकके भ्रष्ट होनेके सिवा और कोई लाभ नहीं हो सकता। हमें गम्भीरतापूर्वक सोचना चाहिये कि तलाक-कानून हमारे लिये बहुत ही घातक है; यह हमारे पवित्रधर्म तथा गौरवमयी प्राचीन संस्कृतिसे सर्वथा विरुद्ध है। हमारे शास्त्रोंमें पतिके जीवित रहनेके समयकी तो बात ही क्या, मरनेपर भी दूसरे पुरुषको पति बनाना महान् घृणित और पाप बतलाया है।

पतिके मरनेके बाद तो साध्वी स्त्रीके लिये जप, तप, व्रत, संयम आदिका पालन करते हुए फल-मूल आदिसे अपना जीवन बिताना श्रेयस्कर है। इस प्रकार संयम और ब्रह्मचर्यसे रहनेवाली स्त्री उत्तम गतिको प्राप्त होती है।

कामं तु क्षपयेद् देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः।
न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु॥
आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी।
यो धर्म एकपत्नीनां काङ्क्षन्ती तमनुत्तमम्॥
मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः॥
अपत्यलोभाद् या तु स्त्री भर्तारमतिवर्तते।
सेह निन्दामवाप्नोति पतिलोकाच्च हीयते॥
नान्योत्पन्ना प्रजास्तीह न चाप्यन्यपरिग्रहे।
न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्तोपदिश्यते॥
पतिं हित्वापकृष्टं स्वमुत्कृष्टं या निषेवते।
निन्द्यैव सा भवेल्लोके परपूर्वेति चोच्यते॥
व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम्।
शृगालयोनिं प्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते*॥

(मनु० ५। १५७-१५८,१६०—१६४)

* ऐसा ही श्लोक ९। ३० का भी है।

'विधवा स्त्री फल-फूल, कन्द-मूल आदि सात्त्विक पदार्थोंसे जीवन-निर्वाह करती हुई इच्छापूर्वक अपने शरीरको सुखा डाले; परंतु पतिकी मृत्युके बाद किसी पराये पुरुषका (काम-भावनासे) नाम भी न ले। पतिव्रता स्त्रियोंका जो सर्वोत्तम धर्म है, उसे पानेकी इच्छा रखनेवाली विधवा मृत्युपर्यन्त क्षमाशील, मन-इन्द्रियोंको संयममें रखनेवाली तथा ब्रह्मचारिणी रहे। पतिकी मृत्युके पश्चात् ब्रह्मचर्यव्रतमें दृढ़तापूर्वक स्थिर रहनेवाली साध्वी स्त्री पुत्रहीना होनेपर भी स्वर्गलोकमें जाती है; जैसे कि नैष्ठिक ब्रह्मचारी (पुत्रके बिना भी) स्वर्गमें जाते हैं? किंतु जो स्त्री पुत्रके लोभसे पतिका उल्लंघन (व्यभिचार) करती है, वह इस लोकमें तो निन्दा पाती ही है, पतिलोकसे भी वंचित रह जाती है। पर-पुरुषसे उत्पन्न हुई सन्तान यहाँ अपनी सन्तान नहीं मानी जाती; इसी प्रकार परायी स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुई सन्तान भी अपनी नहीं है। साध्वी स्त्रियोंके लिये कहीं भी दूसरे पतिको अपनानेका उपदेश नहीं दिया गया है। जो स्त्री धन आदिकी दृष्टिसे अपने निम्न श्रेणीके पतिको त्यागकर उच्च वर्गमें गिने जानेवाले किसी पर-पुरुषका सेवन करती है, वह इस लोकमें निन्दनीय ही होती है तथा 'परपूर्वा' (पहलेकी परायी स्त्री) कही जाती है। पतिके

विपरीत आचरण—व्यभिचार करनेसे स्त्री इस लोकमें निन्दाका पात्र बनती है; दूसरे जन्ममें उसे सियारकी योनिमें जाना पड़ता है तथा पापजनित रोगोंसे भी वह पीड़ित रहती है।'

आजकल कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि 'जब स्त्रीके मरनेपर पुरुष दूसरा विवाह कर सकता है, तब फिर स्त्रीको भी पतिके मरनेपर पुनर्विवाह करनेमें क्या आपत्ति है?' इसका उत्तर यह है कि मरनेके बाद पुरुषके पुनर्विवाह कर लेनेपर भी उसकी पहलेकी संतान उसी कुल-गोत्रमें ही रहकर अपने पिताके द्वारा रक्षित और पालित हो सकती है और उसका उस घरमें दायभाग रहता है, उसका अपने हिस्सेके अनुसार अधिकार कायम रहता है; किंतु पतिकी मृत्यु हो जानेपर स्त्री यदि बच्चोंको वहीं छोड़कर दूसरे पुरुषसे विवाह करके वहाँ चली जाती है तो वे बच्चे बिलकुल अनाथ हो जाते हैं, उनका पालन-पोषण ही असम्भव-सा हो जाता है और यदि संतानको साथ ले जाय तो उनका इस गोत्र और कुलसे सम्बन्ध-विच्छेद हो जानेके कारण वे अपने पैतृक धनसे वंचित रह जाते हैं। जहाँ दूसरे घरमें वह जाती है, वहाँ उसका पति न तो उन बच्चोंसे प्यार करता है और न उन्हें दायभागका हिस्सा ही देता है। इस प्रकार वे पहलेवाले घरसे भी हाथ धो बैठते हैं और दूसरे घरसे भी

उन्हें कुछ नहीं मिलता। उनके शादी-विवाह भी कठिन हो जाते हैं। इस प्रकार वे महान् भयमें पड़ जाते हैं। इसलिये भी शास्त्रकारोंने पुनर्विवाहका बहुत निषेध किया है। यदि कहें कि 'शास्त्रकारोंने पुरुषको तो स्त्रीके जीते ही विवाह करनेकी छूट दे रखी है, स्त्रियोंको ऐसी छूट क्यों नहीं दी; उन्होंने यह अन्याय किया है।' तो इसका उत्तर यह है कि एक पुरुष एक साथ पाँच स्त्रियोंके साथ रहकर एक ही वर्षमें उनके द्वारा पाँच संतान पैदा कर सकता है; किंतु एक स्त्री एक साथ पाँच पुरुषोंसे विवाह करके एक भी संतान पैदा नहीं कर सकती। यह स्त्री-पुरुषमें प्राकृतिक भेद है। इस दृष्टिसे पुरुषका अधिक विवाह करना संगत कहा गया है। परंतु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि हम पुरुषके बहुविवाहके पक्षपाती हैं। हम तो स्त्रीके जीते किसी पुरुषके दूसरा विवाह करनेका घोर विरोध करते हैं, बल्कि स्त्रीके मरनेपर भी पुरुषका पुनर्विवाह करना कोई महत्त्वकी बात नहीं है, महत्त्व तो ब्रह्मचर्यके पालनमें ही है। शास्त्रकारोंने केवल मानव-जातिकी शृंखलाकी रक्षाके लिये धर्मानुकूल विवाहका विधान किया है। किसी भी हालतमें पुरुषका दूसरा विवाह करना आदर्श नहीं है, बल्कि क्लेश बढ़ानेवाला और कल्याण-मार्गसे पतन करनेवाला ही है। हमने तो केवल पुरुषोंको

शास्त्रोंमें यह छूट क्यों दी गयी, यह दिखलानेके लिये ही युक्ति दी है। अतः स्त्रियोंके लिये तो पतिके जीतेजी या मरनेपर—किसी भी हालतमें दूसरा विवाह करनेका घोर निषेध किया गया है। इसलिये कल्याण चाहनेवाली स्त्रीको पुनर्विवाह तो दूर रहा, दूसरे पुरुषका भूलकर स्मरण भी नहीं करना चाहिये।

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत्॥
नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित्।
न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः॥
अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः।

(मनु० ९। ४७,६५-६६)

'कुटुम्बमें धन आदिका बँटवारा एक ही बार होता है, कन्या किसीको एक ही बार दी जाती है तथा 'मैं दूँगा' यह प्रतिज्ञा भी एक ही बार की जाती है; सत्पुरुषोंके लिये ये तीन बातें एक-एक बार ही होती हैं। विवाहके मन्त्रोंमें कहीं भी नियोगकी चर्चा नहीं है; विवाहकी विधिमें विधवाका पुनर्दान भी नहीं कहा गया है। यह पशुधर्म है, विद्वान् द्विजोंने इसकी सदा ही निन्दा की है।'

शास्त्रोंमें स्त्रियोंके लिये बहुत-से दुर्व्यसन बताये गये हैं। कल्याण चाहनेवाली स्त्रियोंको सदा उन दोषोंसे बचना चाहिये।

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसंदूषणानि षट्॥

(मनु० ९। १३)

'मद्यपान, दुष्टोंका संग, पतिसे अलग रहना, अकेली घूमना, अधिक सोना तथा दूसरेके घरमें निवास करना—ये छः स्त्रियोंके लिये दोष हैं (इनके कारण वे पतनके गर्तमें गिरती हैं)।'

याज्ञवल्क्य, पराशर आदि ऋषि-मुनियोंने भी स्मृतियोंमें स्त्रियोंके लिये प्रायः इसी प्रकारके उपदेश लिखे हैं; लेखका कलेवर न बढ़ जाय, इसलिये विस्तार नहीं किया गया।

अतएव स्त्रियोंको पूर्वमें हुई सती-साध्वी स्त्रियोंको आदर्श मानकर उनके उपदेशोंके अनुसार अपना जीवन बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये। अब पूर्वमें हुई सती-साध्वी स्त्रियोंके उदाहरणपूर्वक स्त्रियोंके लिये कुछ खास पालन करनेकी बातें बतलायी जाती हैं।

जिस प्रकार मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने एकपत्नीव्रतका महान् आदर्श दिखलाया, उसी प्रकार जगज्जननी श्रीसीताजीने समस्त स्त्रियोंको शिक्षा देनेके लिये स्वयं आचरण करके पातिव्रत्यधर्मका दिग्दर्शन कराया। उन्होंने भोग-सुख, राजमहल, आभूषण, रेशमी वस्त्र, मेवा-मिष्टान्न

आदि सम्पूर्ण भोग-सामग्रियोंको तुच्छ समझकर उनका परित्याग कर दिया तथा स्वामीके साथ वृक्षोंके नीचे पर्णशालामें निवास करना, शीत-उष्ण-वर्षा आदिका सहन करना और कन्द-मूल-फल खाकर जीवन-निर्वाह करना आदि कठोर व्रतोंका पालन करते हुए स्त्रियोंके सर्वोत्कृष्ट धर्म पातिव्रत्यका नियमपूर्वक अनुष्ठान करके सबके लिये सुन्दर आदर्श उपस्थित कर दिया।

इसी प्रकार सावित्रीने राजा-महाराजाओंकी अवहेलना करके राजमहलके भोग-विलासोंको तुच्छ समझकर वनवासी सत्यवान्‌को ही पतिरूपमें वरण किया और पतिकी तथा अपने सास-ससुरकी सेवा करनेमें ही अपना जीवन लगाया। पतिसेवाके प्रभावसे उसने यमराजपर भी विजय प्राप्त कर ली। सास-ससुर आदिके लिये अनेक वरदान प्राप्त करके पतिको यमराजके फंदेसे छुड़ा लिया।

मदालसाने अपने पुत्रोंको उत्तम शिक्षा देकर उन्हें जीवन्मुक्त बना दिया और पतिके साथ सर्वोत्तम गति प्राप्त की।

गान्धारीने अपने पातिव्रतधर्मके बलसे यादवकुलको शाप दे श्रीकृष्णको तथा पाण्डवोंको भी अपना प्रभाव दिखलाकर आश्चर्यचकित कर दिया।

दमयन्तीने बुरी दृष्टिसे देखनेवाले दुराचारी व्याधको

अपने पातिव्रतधर्मसे भस्म कर दिया।

शुभा नामक स्त्री पातिव्रतधर्मका पालन करके अपने पतिको भगवान्‌के परमधाममें ले गयी।

जिस अनसूयाने सीताजीको पातिव्रतधर्मका अमूल्य उपदेश दिया और जिसके पातिव्रत्यके प्रभावसे ब्रह्मा-विष्णु-महेशने उसके यहाँ अवतार लिया, उसकी महिमा क्या कही जाय?

इसी प्रकार इतिहास-पुराणोंमें बहुत-सी पतिव्रता स्त्रियोंकी गाथाएँ भरी पड़ी हैं, इसके लिये स्त्रियोंको उन ग्रन्थोंके उन-उन स्थलोंको पढ़ना चाहिये।

स्त्रियोंके लिये सबसे बढ़कर कर्तव्य है—पातिव्रतधर्मका पालन। पतिके मरनेपर भी उनको, जिस प्रकार जीवनकालमें पतिके आदेशका पालन किया, वैसे ही पतिकी आज्ञाके अनुसार वैराग्य और त्यागपूर्वक ईश्वरकी भक्ति करते हुए पाण्डवजननी कुन्तीकी तरह अपना जीवन बिताना चाहिये। विधवा स्त्रियोंके लिये इस प्रकारका आचरण करना ही पातिव्रतधर्मका पालन करना है।

संसारमें चार प्रकारकी स्त्रियाँ होती हैं—एक वे, जो इस लोकमें भी सुखी और परलोकमें भी सुखी रहती हैं। दूसरी वे, जो इस लोक और परलोक दोनोंमें दुःखी रहती हैं। तीसरी वे, जो इस लोकमें तो सुखी रहती हैं, परन्तु परलोकमें

दुःख भोग करती हैं और चौथी वे, जो इस लोकमें तो दुःखी रहती हैं किंतु परलोकमें परम सुखी हो जाती हैं।

इनमें सर्वोत्तम स्त्रियाँ वे हैं, जो यहाँ-वहाँ दोनों जगह सुखी रहती हैं। जो स्त्री ईश्वरकी भक्ति करती है और निःस्वार्थभावसे सबकी सेवा करती है, उसके पास पीहर या ससुरालमें सब स्त्रियोंके साथ हेतुरहित प्रेम बढ़ानेके लिये दो सर्वोत्तम वशीकरणमन्त्र हैं—(१) सबसे प्रेम होनेके लिये उन स्त्रियोंकी तथा उनके बाल-बच्चे आदिकी निःस्वार्थभावसे सेवा करना, उनका हित करनेमें ही लगे रहना और अहित तो किसीका कभी किसी प्रकार करना ही नहीं। जिस प्रकार स्वार्थी मनुष्य अपने स्वार्थके लिये दूसरोंकी सेवा करके उन्हें सन्तुष्ट करनेका प्रयत्न करता है, वैसे ही अपने तन, मन, धनसे तत्पर होकर सबकी निःस्वार्थभावसे सेवा करना। (२) उनके अवगुणोंकी तरफ जरा भी खयाल न करके उनके सच्चे गुणोंका ही बखान करना। वस्तुतः इन दो मन्त्रोंको काममें लानेवाली स्त्री अपने सद्बर्तावसे सबको जीत लेती है। जो स्त्री इस तरह सबका हित चाहनेवाली होती है, उसके सद्व्यवहारसे सब उसके अनुयायी और भक्त बन जाते हैं। इसलिये उसका जीवन यहाँ सुखमय और प्रेममय हो जाता है, एवं

ईश्वरभक्ति तथा निःस्वार्थ सेवाके प्रभावसे उसको परम गतिकी प्राप्ति हो जाती है, ऐसी स्त्रियोंको यहाँ भी कीर्ति, सुख-शान्ति प्राप्त होती है और परलोकमें भी परम शान्ति और परम आनन्दकी प्राप्ति हो जाती है।

इससे विपरीत जो दुष्ट स्वभावकी स्त्री कलह करनेवाली होती है, वह स्वार्थान्ध स्त्री लोभ, मोह या क्रोधके वशीभूत होकर, पीहर अथवा ससुरालमें या जहाँ-कहीं भी वह रहती है, अन्य स्त्रियोंके साथ द्वेष-कलह और लड़ाई-झगड़ा ही करती रहती है। सबसे द्वेष हो जानेके कारण वह दूसरोंकी निन्दा करती है और उनके गुणोंमें भी दोषदृष्टि ही करती है। सदा सबको नीचा दिखाने, उन्हें ताना मारने, उनका अहित करने तथा तन-मन-धनसे अनिष्ट करनेका प्रयत्न करना ही उसका काम हो जाता है। इसके फलस्वरूप वे सब स्त्रियाँ भी बदलेमें उसके साथ वैसा ही व्यवहार करती हैं, जिससे उसका जीवन दुःखमय हो जाता है। इस प्रकारके असद्व्यवहारके कारण इस लोकमें तो उसका जीवन प्रत्यक्ष दुःखमय हो ही जाता है, सदा दूसरोंसे द्वेष-द्रोह करनेके कारण परलोकमें भी उसे भयानक दुःखोंका ही भोग करना पड़ता है।

तीसरी ऐसी स्त्री होती है, जो आजीवन गृहस्थमें ही

निरत रहकर नाना प्रकारके खान-पान, ऐश-आराम, स्वाद-शौक और विषय-भोगोंमें फँसी रहती है। उसका जीवन विलासितामय, काम-भोगपरायण हो जाता है और ऐश-आराममें ही प्रमत्त हो जानेके कारण उसे जीव-हिंसा या दूसरेके कष्टकी भी परवा नहीं रहती। वह सदा अपने इन्द्रियचरितार्थतारूप सुख-साधनमें ही रत रहती है और अपने स्वाद-शौककी पूर्तिके लिये चमकीले महीन सुन्दर रेशमी वस्त्र, बढ़िया तूस-दुशाले आदि, कोमल चमड़ेकी वस्तुएँ, इत्र-फुलेल-सेंट आदि अपवित्र पदार्थोंका व्यवहार और शरीरको पुष्ट करनेके लिये डॉक्टरी दवा, अरिष्ट, आसव आदिका सेवन एवं मनोरंजनके लिये गंदे नाटक-सिनेमा देखने तथा क्लब आदिमें जाने आदि प्रमादपूर्ण कर्मोंमें ही रची-पची रहती है। उसे इस बातका भी ध्यान नहीं रहता कि ये सुन्दर रेशमी वस्त्र असंख्य कीड़ोंको मारकर उनसे बनाये जाते हैं। ये बढ़िया कोमल चमड़ेकी वस्तुएँ जीवित गाय आदि पशुओंको मारकर प्राप्त किये चमड़ेसे बनायी जाती हैं, इन इत्र-फुलेल-सेंट आदिके निर्माणमें अपवित्रताके साथ ही बड़ी हिंसा होती है और ये बढ़िया दीखनेवाले तूस-दुशाले आदि गर्भवती भेड़ोंको मारकर उनके गर्भगत बच्चेके रोएँसे बनाये जाते हैं। इसी

प्रकार डॉक्टरी दवाइयोंमें जीवोंकी हिंसा तो होती ही है, मदिराका भी प्राय: सम्मिश्रण रहता है, जिसके कारण वे सर्वथा अपवित्र और तामसी होती हैं। देशी दवाइयोंमें भी अरिष्ट, आसव, सिरके आदि तामसी वस्तु होनेसे इनका सेवन करनेवालेकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। नाटक-सिनेमा-क्लब आदिके प्रमादपूर्ण मनोरंजनमें व्यर्थ समय लगानेसे जीवनका मूल्यवान् समय, धन और चरित्र नष्ट होता है; इनसे मनमें गंदे भाव पैदा होते हैं, जिनसे महान् अनर्थोंकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकारके आचरण करनेवाली स्त्रीकी केवल अपने आराम-भोगकी ओर ही प्रवृत्ति हो जानेके कारण वह उन्हींमें मस्त रहती है, उसका दूसरेके कष्टोंकी ओर ध्यान ही नहीं जाता; किंतु यह ध्यानमें रखना चाहिये कि कोई भी भोग बिना किसी प्रकारका आरम्भ किये नहीं मिलता और जितना अधिक आरम्भ होता है, उसमें उतनी ही अधिक हिंसा होती है। फिर जो पदार्थ या क्रिया प्रत्यक्ष ही हिंसामय है, उसका तो कहना ही क्या! इन पदार्थोंके सेवनमें यद्यपि एक बार मोहवश क्षणिक सुख-सा प्रतीत होता है, पर परिणाममें वह घोर नरकोंको देनेवाला है। जो स्त्री पर-पुरुषके साथ सहवास करती है, उसे तो महान् भयंकर नरकोंकी प्राप्ति होती ही है; परंतु यदि कोई

स्त्री अपने पतिके साथ भी अवैध, अनुचित गमन करती है तो उसका भी परलोक भ्रष्ट हो जाता है। इस प्रकार सदा विषय-भोगोंमें ही रची-पची रहकर उन्हींका सेवन करनेवाली स्त्रीको यहाँ तो अज्ञानके कारण क्षणिक सुख प्राप्त होता प्रतीत होता है; किंतु वह परलोकमें असीम, अनन्त दुःखोंका ही भोग करती है।

चौथे प्रकारकी स्त्री वह है, जो ससुराल या पीहरमें रहकर दूसरोंका कटुवचन सहती है, दूसरोंके अत्याचारको सहन करती है, ऐश-आराम-भोग, आलस्य, प्रमाद, स्वाद-शौक आदिका परित्याग करके संयमपूर्वक अपना जीवन बिताती है। तीर्थ, व्रत, उपवास, जप, स्वाध्याय आदि करके आत्मकल्याणार्थ शारीरिक कष्ट सहन करती है और सरदी-गरमी-वर्षा आदिको सहन करके तपका अनुष्ठान करती है। उसे वर्तमान कालमें तो कष्टका ही अनुभव होता है; किंतु उसका आचरण मुक्तिका हेतु होनेसे वह परलोकमें परम शान्ति और परम आनन्दको प्राप्त करती है।

ऊपर जो चार प्रकारकी स्त्रियाँ बतलायी गयी हैं, उनमें वे दो सर्वोत्तम (सात्त्विक) हैं, जिन्हें इस लोक और परलोकमें—दोनों जगह सुख है अथवा यहाँ सांसारिक

दुःखका अनुभव होनेपर भी परलोकमें सुखी हैं; मध्यम (राजसी) वह है, जो यहाँ तो सुखी है पर परलोकमें दुःख प्राप्त करती है और अधम (तामसी) वह है, जो यहाँ भी दुःखी है और परलोकमें भी दुःखी है। स्त्रियोंको चाहिये कि सर्वदा सर्वोत्तम आचरण करनेमें ही तत्पर रहें। राजसी-तामसी स्त्रियोंका अनुकरण कभी भूलकर भी न करें।

अब स्त्रियोंके लिये कर्तव्याकर्तव्यकी कुछ विशेष बातें बतलायी जाती हैं।

अनिच्छा या परेच्छासे जो कुछ भी प्राप्त हो, उसे ईश्वरका विधान, उनका भेजा हुआ पुरस्कार समझकर उसीमें हर समय प्रसन्नचित्त रहे।

बड़ोंमें श्रद्धा-पूज्यभावसे, बराबरवालोंमें प्रेम-मैत्रीभावसे, छोटोंमें स्नेह-वात्सल्यभावसे—इस प्रकार सबमें हेतुरहित प्रेम बढ़ावे और सदा उनके हितमें रत रहे।

जीवनको निकम्मा न बनावे। कुछ-न-कुछ उत्तम काम करती रहे। घर, समाज और देशका सुधार हो, हित हो— ऐसे कार्योंमें समय लगावे। उद्यमशील बने। कभी परावलम्बी न होकर स्वावलम्बी बने। अपने घरके कामोंके लिये दूसरोंसे सहायता न ले। खर्चको घटावे। विवाह-शादी, मृतक-खर्च, स्वाद-शौकीनी, वेश-भूषा

आदिमें फिजूलखर्च न करे। इस प्रकार व्यर्थ खर्च करके अपने पतिपर भार न बढ़ावे, बल्कि उसे घटानेकी चेष्टा करे। जीवन इस प्रकारका सादा और कम खर्चीला बनावे कि जिससे दूसरोंसे सहायता लेनेकी जरूरत ही न पड़े।

असच्चरित्र, भोगी, प्रमादी, नीच, दुष्ट, धूर्त और कुमार्गी स्त्री-पुरुषोंका कभी संग न करे और न उनका कभी स्मरण ही करे।

बाजारका भोजन, पूड़ी-मिठाई, चाय, बिस्कुट, बरफ आदिका व्यवहार न करे। स्वयं पाककलामें निपुण होकर घरमें ही चीजें तैयार करके काममें लावे। मशीनका बना हुआ आटा, चीनी, तेल, कपड़ा और चावल आदि काममें न लावे; हाथकी बनी हुई चीजें ही काममें लावे।

बीमार होनेपर अपवित्र तथा हिंसायुक्त दवाओंका सेवन न करे। बीमारीमें पथ्य-परहेजपर ही विशेष खयाल रखे। विशेष आवश्यकता हो तो देशी पवित्र आयुर्वेदीय दवाका सेवन करे तथा अपने बाल-बच्चोंको भी इसी तरहकी शिक्षा दे।

रोगादिसे पीड़ित आतुर अवस्थामें अथवा दूसरोंके द्वारा सतायी जानेपर भी विशेष वैद्य-डॉक्टरों और वकील-बैरिस्टरोंके चक्करमें न पड़े। उस समय पथ्य, संयम, धीरज और विवेकसे काम लेकर ही उस अवस्थाका प्रतीकार करे।

आजकल बहुत-से धूर्त नर-नारी भोले-भाले बालकों और स्त्रियोंको अपने चंगुलमें फँसानेके लिये उन्हें सोनेका महल दिखलाते हैं और पुत्र-धन आदिका लोभ देकर उनके धनका तथा सतीत्वका अपहरण किया करते हैं। ऐसे लोगोंके प्रलोभनमय वाक्योंमें न फँसे; ऐसे लोगोंसे सदा दूर ही रहे।

बहुत-से धूर्त जादू-टोना, यन्त्र-तन्त्र आदि क्रियाओंके द्वारा फुसलाकर, प्रलोभन देकर ठगते हैं; उनके फंदेमें नहीं पड़े। भूत, प्रेत, डाकिनी, पिशाचिनी आदि किसीमें प्रवेश करते हैं, दुःख देते हैं—इस प्रकारकी धोखेकी बातोंमें न फँसे और न भूत-प्रेत आदिका या अनिष्टका झूठा बहम करके मनमें कभी भय ही लावे।

भैरव, पीर, फकीर आदिके नामपर शास्त्रविरुद्ध मनौती आदि बोलकर अपने धर्म-कर्मको बर्बाद करनेकी मूर्खता भी कभी न करे।

अपनेसे जो कुछ हो सके, दूसरोंका हित ही करे। किसीसे सेवा करानेकी इच्छा कभी न करे, न सेवा करावे ही। देवता या मनुष्य—किसीसे किसी प्रकारकी भी कामना या इच्छा नहीं करे और न किसीमें आसक्त ही हो।

भारी आपत्ति पड़नेपर भी भय, काम अथवा लोभके कारण धर्मसे विचलित न हो तथा सदा शूरता, वीरता, गम्भीरता, धीरता आदि गुणोंकी वृद्धि होकर आत्मबल और सद्बुद्धि प्राप्त हो—इसीके लिये प्रयत्न करे।

अपना समय निद्रा-आलस्य, भोग-प्रमाद, ताश-चौपड़, थियेटर-सिनेमा, खेल-तमाशे आदिमें व्यर्थ न बितावे तथा काम-क्रोध, लोभ-मोह, राग-द्वेष आदि द्वन्द्वोंका सर्वथा त्याग कर दे।

जिनसे तेज, क्षमा, धैर्य, शान्ति, सरलता, समता, भक्ति, ज्ञान-वैराग्य, बल, बुद्धि, वीर्य आदि सद्गुण-सदाचारोंकी वृद्धि हो तथा जिनसे सम्पूर्ण संसारका और अपना हित हो, ऐसे कामोंमें ही अपना समय लगावे।

अपनी संतानको भी ऐसी ही शिक्षा दे, जिससे उनमें उपर्युक्त सद्गुण-सदाचारोंका समावेश हो और वे नीति और धर्ममें निपुण होकर कुटुम्ब, समाज और देशकी सेवा करते हुए अपना तथा सबका कल्याण-साधन कर सकें।

इस प्रकार निःस्वार्थभावसे आचरण करनेपर स्त्रियोंके अन्तःकरणकी शुद्धि होकर उन्हें परम शान्ति और परम आनन्दमय परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है।

स्त्रियोंके लिये कल्याणके कुछ घरेलू प्रयोग

(एक उपदेशप्रद दृष्टान्त)

किसी संयुक्त परिवारमें दो स्त्री–पुरुष, उनके पाँच लड़के और दो लड़कियाँ थीं। लड़कोंका विवाह हो चुका था। उनमेंसे चारके बाल–बच्चे भी थे। लड़कियाँ दोनों क्वारी थीं। सबसे छोटे लड़केका ब्याह कुछ ही दिन पहले हुआ था। उसकी स्त्री अभी मैकेमें ही थी। इस प्रकार दोनों लड़कियोंको मिलाकर घरमें कुल सात स्त्रियाँ थीं। वे चाहतीं तो सब मिलकर घरका काम–काज अच्छी तरह कर सकती थीं; परंतु उनकी आपसमें बनती न थी। वे एक दूसरीसे जला करती थीं और घरके काम–काजसे जी चुराती थीं। उनमेंसे प्रत्येक यही चाहती कि उसे कम–से–कम काम और अधिक–से–अधिक आराम मिले। आये दिन उनमें तू–तू, मैं–मैं हो जाया करती थी; घरमें अशान्ति और कलहका साम्राज्य था। इसी परिस्थितिमें सबसे छोटे लड़केकी स्त्री भी अपने मैकेसे आ गयी। वह साधु घरानेकी लड़की थी। उसे बचपनसे ही बड़ी अच्छी शिक्षा मिली भी। वह अपनेको उस क्षुब्ध वातावरणमें पाकर घबरा उठी। अपनी सास और जिठानियोंको आपसमें लड़ते–

झगड़ते देख वह एक दिन रो पड़ी और अत्यन्त आर्त होकर मन-ही-मन भगवान्‌से प्रार्थना करने लगी—'प्रभो! क्या यही सब देखने-सुननेके लिये मुझे आपने इस घरमें भेजा है? यहाँ तो मैं एक दिन भी न रह सकूँगी। मुझे रात-दिनका झगड़ा अच्छा नहीं लगता। न जाने मैंने पिछले जन्मोंमें ऐसे कौन-से दुष्कर्म किये हैं, जिनके कारण मेरा इस घरमें ब्याह हुआ है?' रोते-रोते उसकी घिग्घी बँध गयी। उसे स्पष्ट सुनायी दिया मानो उसे कोई सान्त्वनापूर्ण शब्दोंमें कह रहा है— 'बेटी! घबरा मत, इस घरका सुधार करनेके लिये ही तुझे यहाँ भेजा गया है। तुम-जैसी लड़कीकी यहाँ आवश्यकता थी।'

इन शब्दोंको सुनकर छोटी बहूको बड़ी सान्त्वना मिली। उसकी सारी घबराहट जाती रही। उसने मन-ही-मन अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया। उसने कलहका मूल जानना चाहा। उसे मालूम हुआ कि उसकी सास और जिठानियों तथा ननदोंने आपसमें घरका काम बाँट लिया है। सास और ननदें ऊपरका काम करती थीं और बहुएँ पारी-पारीसे भोजन बनाती थीं। और-और कामोंके लिये भी पारी बाँध ली गयी थी; परंतु यदि उनमेंसे दैवात् कोई बीमार हो

जाती तो दूसरी बहुएँ उसके बदलेका काम करनेमें आनाकानी करती थीं। वे उसपर बहानेबाजीका आरोप करतीं और अनेक प्रकारके आक्षेप करतीं। लड़ाईका दूसरा कारण यह होता कि जब कभी घरमें बाहरसे कोई खाने-पीनेकी चीज आती तो सब-की-सब यह चाहतीं कि अच्छी-से-अच्छी चीज अधिक-से-अधिक मात्रामें मुझे मिले। बस, इसीपर झगड़ा शुरू हो जाता और आपसमें गाली-गलौजतककी नौबत आ जाती। कभी-कभी मामूली बातोंको लेकर बखेड़ा खड़ा कर लिया जाता। यदि कभी एक भाईका लड़का दूसरे भाईके लड़केसे लड़ पड़ा तो इसीपर दोनोंकी माताएँ एक-दूसरीको खूब खोटी-खरी सुनातीं। इन सब बातोंको देखकर छोटी बहूको बड़ा दुःख हुआ। जिस दिन उसने भगवान्का आदेश सुना, उसी दिनसे वह झगड़ा मिटानेका उपाय सोचने लगी। उसने सोचा कि भगवान्ने इसी बहाने उसे सेवाका बड़ा ही सुन्दर अवसर प्रदान किया है। वह एक दिन चुपकेसे अपनी सबसे बड़ी जिठानीके पास गयी। उस दिन उसकी सबेरे रसोई बनानेकी पारी थी। उसने जिठानीसे कहा—'जिठानीजी! मैं आप सबसे छोटी हूँ। मेरे रहते आप रसोई बनायें—यह उचित नहीं मालूम होता।

फिर आपको तो बाल-बच्चोंकी भी सँभाल करनी पड़ती है। मेरे जिम्मे और कोई काम है नहीं। इसलिये बड़ा अच्छा हो यदि आप अपनी रसोई बनानेकी पारी मुझे दे दें। मैं आपका बड़ा उपकार मानूँगी।' जिठानी पहले तो बड़ी देरतक आनाकानी करती रही। वह बोली—'बहू! अभी तो तुम्हारे खाने-पहननेके दिन हैं। जब कुछ सयानी हो जाओ, तब चूल्हा फूँकनेके काममें पड़ना। अभी कुछ दिन आराम कर लो, गृहस्थीका सुख भोग लो। आखिर तो यह सब करना ही है।' छोटी बहूने कहा— 'जिठानीजी! मैं आपके पैरों पड़ती हूँ, मुझे इस तरह निराश न करो। यही दिन तो मेरे काम करनेके हैं। अभीसे यदि मुझे आप लोग आरामतलब बना देंगी तो आगे जाकर मैं किसी कामकी न रह जाऊँगी। अवश्य ही मुझसे कोई बड़ा अपराध हो गया है, जिसके कारण मुझे आप अपने अधिकारसे वंचित कर रही हैं।' यह कहकर वह रोने लगी। अब तो जिठानी और अधिक उसकी बातको न टाल सकी। उसने अपनी पारी उसे दे दी। इस प्रकार क्रमशः उसने सभी जिठानियोंसे अनुनय-विनय करके उन सबकी पारी ले ली। यह काम अपने जिम्मे लेकर वह इतनी प्रसन्न हुई

मानो उसे कोई निधि मिल गयी हो। वह प्रतिदिन सबेरे बड़े चावसे सबके लिये रसोई बनाती और सबको खिला-पिलाकर अन्तमें स्वयं भोजन करती। उसे ऐसा करनेमें तनिक भी थकान नहीं मालूम होती, बल्कि उसे इसमें बड़ा सुख मिलता। वह दिनोदिन दूने उत्साहसे इस कामको करने लगी। वह रसोई भी बहुत अच्छी बनाती और फुर्तीसे बनाती। बात-की-बातमें बहुत-सी सामग्री तैयार कर लेती। यदि कभी कोई मेहमान भी आ जाते तो वह उकताती न थी। उन्हें भी बड़े प्रेमसे भोजन कराती, क्योंकि वह इसमें अपना लाभ समझती थी। उसकी इस अद्‌भुत लगन एवं सेवाभावको देखकर सभी कोई उसकी प्रशंसा करने लगे। एक दिन उसकी सास उसके पास आयी और बोली—'बेटी! तूने यह क्या किया। सबकी पारी अपने जिम्मे क्यों ले ली?' उसने बड़ी नम्रतासे उत्तर दिया—'माताजी! मेरे माता-पिताने मुझे यही शिक्षा दी है कि यह शरीर तो एक दिन मिट्टीमें मिल जानेवाला है। इसे अधिक-से-अधिक दूसरोंकी सेवामें लगाना चाहिये। यही इसका सबसे अच्छा उपयोग है। सेवा ही सबसे बड़ा धन है। अतः आपसे भी मेरी यही प्रार्थना है कि आप मुझे इस कामके लिये बराबर

उत्साह दिलाती रहें।' उसका यह उत्तर सुनकर सास चकित हो गयी। उसने सोचा कि यह तो कोई देवी है, किसी मानुषीका ऐसा सुन्दर भाव नहीं हो सकता।

दूसरे दिन ससुरजी बहुओंको देनेके लिये बहुत-सी साड़ियाँ लाये। उन्होंने प्रत्येक बहूको वर्षभरके लिये बारह-बारह साड़ियाँ दीं। छोटी बहू अपने हिस्सेकी साड़ियोंमेंसे दो साड़ियाँ लेकर अपनी सबसे बड़ी जिठानीके पास गयी और विनयपूर्वक बोली—'जिठानीजी! मुझे यहाँ आते समय पिताजीने बहुत-सी साड़ियाँ दी थीं। मेरा उनसे अच्छी तरह काम चल सकता है। आप मुझपर दया करके ये दो साड़ियाँ अपने लिये रख लीजिये। मुझे इससे बड़ा सुख मिलेगा और मैं आपका बड़ा अहसान मानूँगी।' जिठानीने बहुत आनाकानी की, परंतु उसका अत्यधिक आग्रह देखकर वह उसे अस्वीकार न कर सकी। इसी प्रकार आग्रह करके उसने दो-दो साड़ियाँ अपनी अन्य जिठानियोंको तथा दो अपनी सासको दीं और एक-एक साड़ी अपनी ननदोंको दे दी। उसके इस औदार्यपूर्ण व्यवहारकी भी सबके मनपर गहरी छाप पड़ी। सासके पूछनेपर उसने कहा—'माताजी ! मैं इस कार्यमें भी आपकी मदद एवं प्रोत्साहन चाहती हूँ।

शरीरकी भाँति ये वस्त्र आदि भी क्षणभंगुर हैं। इनका संग्रह आत्मकल्याणमें बाधक है। जीते-जी मोह एवं आसक्ति आदिके कारण इनमें फँसावट हो जाती है और मरते समय भी यदि इनमें मन अटका रहा तो प्रेत आदि योनियोंमें भटकना पड़ता है। सेवाके काममें लगाना ही इन सबका सर्वोत्तम उपयोग है। नहीं तो एक दिन ये यों ही नष्ट हो जायँगी।' सास उसका यह उत्तर पाकर बहुत प्रसन्न हुई और उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगी। इधर घरमें पैसा भी बढ़ गया। ससुरजीने प्रत्येक बहूको छः-छः गहने तैयार कराके दिये। छोटी बहूने अपने हिस्सेके गहनोंको भी अपनी चारों जिठानियों और ननदोंमें बाँट दिया और अपने लिये उसने एक भी न रखा। पूछनेपर उसने यही कहा कि 'मेरे पास अपने पिताजीके दिये हुए बहुत-से गहने पड़े हैं। मेरे लिये उतने ही पर्याप्त हैं।' इस प्रकार उसने अपने साधु व्यवहार एवं उदारतासे सभीके हृदयमें स्थान कर लिया। सभी उससे अत्यधिक संतुष्ट थे।

फिर एक दिन मौका देखकर उसने अपनी बड़ी जिठानीसे सायंकालकी रसोई बनानेकी भी आज्ञा माँगी। उसने कहा— 'मेरे रहते आप रसोई बनानेका कष्ट करें—यह मेरे लिये

बड़ी ही लज्जाकी बात है।' वह इस प्रकार कह ही रही थी कि उसकी सास वहाँ आ पहुँची। वह बड़ी उत्सुकतासे अपनी बड़ी बहूसे पूछने लगी—'यह किस बातके लिये आग्रह कर रही है?' जब उसे मालूम हुआ कि छोटी बहू सायंकालकी रसोई भी अपने ही हिस्सेमें कर लेना चाहती है, तब तो वह हँसकर बोली—'तुमलोग अपनी इस छोटी देवरानीसे सावधान रहना। यह तुमलोगोंसे वास्तविक लाभकी वस्तु ठग लेना चाहती है।' बड़ी बहू सासके अभिप्रायको न समझकर बोल उठी—'सासजी! आप यह क्या कह रही हैं? आपकी यह छोटी बहू तो बड़ी ही साध्वी है, सब प्रकार प्रशंसाके योग्य है। इसके सम्बन्धमें ऐसी बात कैसे कह रही हैं?' सासने कहा— 'तुम समझी नहीं। यह हमलोगोंकी सेवा करके—हमें गहने, कपड़े तथा शारीरिक आराम आदि तुच्छ वस्तुएँ देकर बदलेमें तप आदि हमारी आध्यात्मिक कमाई—जो आत्मोद्धारमें सहायक है, हमसे छीन रही है। इससे बढ़कर ठगई और क्या होगी? इसने मुझे एक दिन बताया था कि दूसरोंकी सेवा करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होकर आत्मकल्याणमें समर्थ हो जाता है। इसने यह भी कहा था कि शुद्ध भावसे रसोईके रूपमें घरवालोंकी

सेवा करनेसे एक ही सालमें कल्याण हो जायगा। इसलिये बहू! सायंकालकी रसोईका काम तो मैं अपने जिम्मे लूँगी। मुझे भी तो आत्माका कल्याण करना है। मैं ही उससे वंचित क्यों रहूँ?' सासकी यह बात सुनकर सबकी आँखें खुल गयीं। फिर तो सबको अपने-अपने कल्याणकी फिक्र पड़ गयी। कहाँ तो सब-की-सब कामसे जी चुराती थीं और छोटी बहूके एक समयकी रसोईका भार अपने सिरपर ले लेनेसे एक प्रकारके सुख एवं सुविधाका अनुभव करती थीं। इसके विपरीत अब सबने अपनी-अपनी सबेरेकी रसोई बनानेकी पारी छोटी बहूसे वापस ले ली। जहाँ कामको लेकर कुछ ही दिन पहले सबमें झगड़ा होता था, अब सब-की-सब बड़े उत्साह एवं दिलचस्पीके साथ अपने-अपने हिस्सेका काम करने लगीं। छोटी बहूका उपाय काम कर गया।

जब छोटी बहूने देखा कि ये लोग कोई भी अब रसोईका काम मुझे नहीं सौंपेंगी, तब उसने सेवाका दूसरा ढंग सोचा। उसने विचार किया, घरमें रोज आठ-दस सेर आटेकी खपत है, वह सारा-का-सारा बाजारसे खरीदा जाता है, इससे तो अच्छा है कि मैं बड़े सबेरे उठकर स्वयं गेहूँ पीस लिया

करूँ। इसमें कई लाभ हैं। जो आटा बाजारसे आता है, वह प्राय: पुराने घुने हुए गेहुँओंका होता है। उसमें मिट्टी मिली हुई रहती है, फिर कलकी चक्कियोंमें जो आटा पिसता है, उसका सार मारा जाता है। वह स्वास्थ्यके लिये हानिकारक होता है। मेरी जिठानियोंने रसोईका काम तो मुझसे वापस ले लिया। अब आत्मकल्याणके लिये मुझे यही काम करना चाहिये। उसने तुरंत यह प्रस्ताव अपने पतिके सामने पेश कर दिया। तुरंत गेहूँकी व्यवस्था हो गयी। बाजारसे आटा खरीदना बंद कर दिया गया। छोटी बहूने दिनमें गेहूँ साफ करके रख दिये और दूसरे दिन सबेरे ही मुँह-हाथ धोकर वह गेहूँ पीसनेके काममें जुट गयी। शरीर स्वस्थ और सबल था और मन उत्साहसे भरा था। काम करनेका अभ्यास था। बात-की-बातमें उसने आठ-दस सेर गेहूँ पीसकर रख दिये। सासको जब इस बातका पता लगा तो वह दौड़ी हुई छोटी बहूके पास आयी और बोली—'बहू! यह आत्मकल्याणका कोई नया तरीका ढूँढ़ निकाला है क्या?' बहूने गद्गद स्वरमें कहा—'माताजी! जिठानियोंने रसोई बनानेका काम तो मुझसे वापस ले लिया। इसलिये मुझे आत्मकल्याणका यह दूसरा मार्ग ढूँढ़ना पड़ा। इसमें शारीरिक श्रम अधिक है। इसलिये

जहाँ आध्यात्मिक लाभके लिये रसोईका काम करनेसे सालभरमें आत्माका कल्याण होता, वहाँ आटा पीसनेसे छः ही महीनोंमें काम बन जायगा। फिर इसमें दुहरा लाभ है। आत्माका कल्याण तो होता ही है, साथ-ही-साथ शारीरिक व्यायाम भी हो जाता है। जिससे शरीरमें फुर्ती और बल आता है। इससे गर्भवती स्त्रियोंको प्रसव भी जल्दी और सुखपूर्वक होता है। घरवालोंको शुद्ध आटा मिलता है, जिससे उनके स्वास्थ्य और मन दोनोंपर अच्छा प्रभाव पड़ता है। इन सब कारणोंसे यह काम मेरे लिये अत्यन्त श्रेयस्कर है। आशा है, आप मेरे इस काममें मेरी सहायता करेंगी।' अब तो सास अपनी छोटी बहूको गुरुवत् मानने लगी। उसकी एक-एक बात उसको सारगर्भित प्रतीत होने लगी। वह उसके प्रत्येक कार्यको गौरवकी दृष्टिसे देखने लगी और स्वयं भी उसीका अनुकरण करनेकी चेष्टा करने लगी। जहाँ छोटी बहूने पहले दिन सबेरे छः बजे आटा पीसनेका कार्य आरम्भ किया था, वहाँ यह दूसरे दिन पाँच ही बजे उस काममें जुट गयी। उसकी देखा-देखी तीसरे दिन उसकी दूसरी बहुओंने चार ही बजे उस कामको शुरू कर दिया। इस प्रकार पहले जहाँ वे सब-की-सब कामसे जी चुराती थीं, अब उन सबमें

काम करनेकी एक प्रकार होड़-सी होने लगी। सभी चाहती थीं कि अधिक-से-अधिक काम मुझे करनेको मिले; क्योंकि सबको उसमें आत्म-कल्याणके दर्शन होते थे। छोटी बहूकी यह दूसरी विजय थी।

अब छोटी बहूने कमरे साफ करने तथा कुएँसे पानी खींचकर लानेका काम अपने जिम्मे ले लिया। सबेरे नौकर झाड़ू लगाने तथा पानी भरने आता तो उससे पहले ही यह सारा काम स्वयं कर लेती। सासने उससे फिर पूछा—'बेटी! इस कामके करनेमें तुम्हारा क्या अभिप्राय है?' छोटी बहूने बड़े ही मधुर स्वरोंमें कहा—'माताजी! आपको इन सब बातोंका भेद बतला देनेसे सेवासे वंचित होना पड़ता है। इसलिये अब मैं इसका रहस्य आपको नहीं बतलाना चाहती। इस अविनयके लिये आप मुझे क्षमा करें।' सासने कहा—'बेटी! अब मैं तेरे कार्यमें बाधा नहीं डालूँगी। तू मुझे इसका आध्यात्मिक रहस्य समझा दे।' बहूने कहा—'सासजी! जहाँ रसोईका काम करनेसे सालभरमें और आटा पीसनेका काम करनेसे छः महीनेमें आत्म-कल्याण होता, वहाँ पानी भरनेकी सेवासे तीन ही महीनोंमें काम बन जायगा; क्योंकि यह काम उन सबकी अपेक्षा

अधिक कठिन है। इसमें श्रम एवं कष्ट अधिक है तथा जानकी भी जोखिम है।' फिर क्या था, सास भी उसके इस काममें हाथ बँटाने लगी। दोनोंका उसमें साझा हो गया। दूसरी बहुओंने यह देखकर साससे कहा—'आपकी अवस्था अब पानी भरने लायक नहीं है। इसलिये यह काम आपको नहीं करना चाहिये।' इसपर सासने उन्हें उत्तर दिया—'क्या मुझे आत्मकल्याण नहीं चाहिये? मैं वृद्धा हूँ, इसलिये मुझे तो जल्दी-से-जल्दी आत्माका कल्याण कर लेना चाहिये।' फिर क्या था, दूसरी बहुएँ भी इस काममें शामिल हो गयीं। अब छोटी बहूने बर्तन माँजनेका काम अपने जिम्मे लिया। सासने इसपर आपत्ति की। वह बोली—'इससे तुम्हारे कपड़े खराब होंगे और आभूषण घिस जायँगे। इस प्रकार महीनेमें जहाँ तुम नौकरकी मजदूरीके पाँच रुपये बचाओगी, वहाँ उसके बदलेमें तुम्हारा दस रुपयोंका नुकसान हो जायगा।' इसपर बहूने कहा—'माना कि ऐसा करनेसे आर्थिक लाभकी अपेक्षा हानि ही अधिक होगी; किंतु मेरे कपड़े चाहे मैले हो जायँ, मेरा अन्तःकरण तो इससे बहुत जल्दी शुद्ध होगा। बात यह है कि जो काम जितना कठिन और लौकिक दृष्टिसे जितना नीचा होता

है, आध्यात्मिक दृष्टिसे ऊँचा और कल्याणकारक होता है। बर्तन माँजनेसे मुझे विश्वास है कि दो ही महीनोंमें मेरा कल्याण हो जायगा और यदि कभी भगवान् ऐसा संयोग भेज दें, जब कि किसी रोगीकी टट्टी-पेशाब उठाना पड़े, तब तो एक ही महीनेमें कल्याण निश्चित है, अवश्य ही भाव हमारा ऊँचे-से-ऊँचा—पूर्ण निष्कामनाका होना चाहिये।'

सासकी तो छोटी बहूके वाक्योंमें अब वेदवाक्योंके समान श्रद्धा हो गयी थी। वह भी बर्तन माँजनेके काममें उसे सहयोग देने लगी। अन्य बहुओंने उसे मना किया। उसने कहा—'अपने लड़कोंके बर्तन तो मैं अवश्य ही माँज सकती हूँ, फिर वृद्धावस्थाके कारण मेरा आत्मकल्याणके साधनमें सबसे अधिक अधिकार है। इसलिये इस विषयमें तुम्हारा आग्रह नहीं माना जा सकता।' फिर तो सब-की-सब बहुएँ उसी काममें जुट गयीं। सब काम आनन-फानन होने लगे। काम-काजकी जो पारी बाँधी गयी थी, वह टूट गयी। जो मौका पाती, वही आगे-से-आगे काम करनेको तैयार रहती। सबमें परस्पर प्रेम और सद्भावकी स्थापना हो गयी। जिस घरमें कलह और अशान्तिका एकच्छत्र साम्राज्य था, वही अब सुख-शान्तिका निकेतन हो गया। जो लोग यहाँकी स्त्रियोंको

लड़ते-झगड़ते देखकर हँसते थे, वे ही उनका आदर्श व्यवहार देखकर आश्चर्य करने लगे। शहरके लोग दर्शकरूपसे उन लोगोंका व्यवहार देखनेके लिये आने लगे। स्त्रियोंके इस आदर्श व्यवहारका पुरुषोंपर भी कम प्रभाव नहीं पड़ा। उनकी देखा-देखी ये सब भी आलसी हो चले थे। अब इनका आदर्श व्यवहार देखकर वे सब भी कर्तव्यपरायण हो गये। जहाँ पहले दूकानका काम प्रायः चढ़ा रहता था, वहाँ अब कामकी अपेक्षा काम करनेवाले अधिक हो गये। जहाँ उनमें पहले कामसे जी चुरानेके कारण झगड़ा होता था, वहाँ अब वे सब-के-सब एक-दूसरेका काम छीनकर लेने लगे, जहाँ पहली लड़ाई नरकोंमें ले जानेवाली थी, वहाँ यह दूसरी लड़ाई कल्याणमें सहायक थी। कहना न होगा कि यह सब परिवर्तन छोटी बहूके सद्भाव, सद्विचार और सच्चेष्टाओंका सत्फल था। जिस प्रकार एक मछली सारे तालाबको गंदा कर देती है, उसी प्रकार एक ही महान् एवं पवित्र आत्मा घरभरका ही नहीं, मुहल्ले, गाँव और नगरभरका सुधार कर देती है। संगकी ऐसी ही महिमा है। सभी माता-बहनोंको इस आख्यायिकासे शिक्षा लेकर आत्माके

कल्याणके लिये निष्कामभावसे दूसरोंकी सेवाका व्रत ले लेना चाहिये। ऐसी सेवा बहुत शीघ्र मुक्तिका कारण बन जाती है—'**स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।**' श्रीमद्भगवद्गीतामें ऐसे अनेकों वाक्य मिलते हैं, जिनसे इस बातकी पुष्टि होती है। श्रीभगवान् कहते हैं—

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।

(५। १२)

'कर्मयोगी कर्मोंके फलको परमेश्वरके अर्पण करके भगवत्प्राप्तिरूप शान्तिको प्राप्त होता है।'

असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः।

(३। १९)

'आसक्तिसे रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्माको प्राप्त हो जाता है।'

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥

(१८। ५६)

'मेरे परायण हुआ कर्मयोगी तो सम्पूर्ण कर्मोंको सदा करता हुआ भी मेरी कृपासे सनातन अविनाशी परमपदको प्राप्त हो जाता है।'